P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-5* ISSUE-5* January- 2018
E: ISSN NO.: 2349-980X **Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika**

19वीं सदी में राजस्थान में दस्तकार वर्ग की सामाजिक–आर्थिक स्थिति तथा वर्तमान से तुलना

शिवचरण चेड़वाल
व्याख्याता,
इतिहास विभाग,
बाबू शोभाराम राजकीय कला महाविद्यालय,
अलवर, राजस्थान

सारांश

भारत में प्राचीन काल से ही हस्तशिल्प कलाओं की सुदृढ़ परम्परा रही है। प्राचीन साहित्यिक स्रोतों में व्यवसाय के आधार पर विभिन्न जातियों के विकास का उल्लेख मिलता है। आरम्भ में वर्ण व्यवस्था कर्म आधारित थी। ऋग्वैदिक काल में चर्मकार, लुहार, वपता, नापित, भीशज आदि व्यावसायिक वर्ग थे। उत्तर वैदिक काल तक आते–आते जाति व्यवस्था कर्म के स्थान पर जन्म आधारित हो गई थी। वह परम्परा तब से जारी होकर उन्नीसवीं सदी तक कायम थी।

उन्नीसवीं सदीं में राजस्थान संक्रमण काल से गुजर रहा था। अनेक नई सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक व्यवस्थाएँ राजस्थान में स्थापित हो रही थी। अतः यह सदी राजस्थान के आधुनिक काल का आरम्भ थी। औद्योगिक एवं व्यापारिक परिवर्तन भी इस सदी में सर्वाधिक हुए, किन्तु अभी तक स्थायित्व नहीं आ पाया था।

मुख्य शब्द : राजस्थान, दस्तकार वर्ग, सामाजिक व आर्थिक स्थिति, तुलना।

प्रस्तावना

मानवीय सभ्यता के निर्माण तथा विकास में पारिस्थितिकी का बहुत बड़ा योगदान रहा है। भौगोलिक स्थितियों, वातावरण, आर्थिक संसाधनों की संस्कृतियों तथा सभ्यताओं के निर्माण में प्रमुख भूमिका रही है। जैसे–राजस्थान के इतिहास निर्माण में यहाँ की शुष्क जलवायु का अत्यधिक प्रभाव रहा है।

मरू प्रदेश की ऐतिहासिक परम्परा प्रागैतिहासिक युग से ही प्रारम्भ हो जाती है। स्थानीय लूणी नदी की प्रागैतिहासिकता और उसके तट पर निवास करने वाले आदिमानव का अस्तित्व भी प्रमाणित हो चुका है। ऐतिहासिक युग में राजस्थान में विभिन्न जातियों और राजवंशों का उल्लेख मिलने लगता है, लेकिन मारवाड़ का क्रमबद्ध एवं व्यवस्थित इतिहास हमें राठौड़ों के प्रभुत्वकाल से ही मिलता है। मुगलों के साथ घनिष्ठ सम्बंधों के कारण मारवाड़ का आर्थिक जीवन तथा व्यवस्थाएँ मुगलों से काफी प्रभावित रही है।

19वी सदीं में अंग्रेजी राज्य की स्थापना के बाद 1818 ई. में अंग्रेज–राजपूत सन्धि हुई। इस सन्धि से राजस्थान के राजनीतिक, सामाजिक एवं धार्मिक जीवन के अतिरिक्त आर्थिक जीवन में अत्याधुनिक परिवर्तन हुए। 19वी शताब्दी की अर्थव्यवस्था आर्थिक इतिहास में एक महत्वपूर्ण पड़ाव को इंगित करती है।

मनसब राज्यों की केन्द्र पर आर्थिक निर्भरता मुगल साम्राज्य के विघटन के साथ ही समाप्त हो गई तथा अब उसका सम्पर्क नई ब्रिटिश अर्थव्यवस्था से होने लगा। परिणामतः क्षेत्रीय राज्यों को स्वयं की सुरक्षा एवं विकास हेतु अपने क्षेत्र के आर्थिक संसाधनों को टटोलने हेतु बाध्य किया। वतन जागीरें अब स्वतंत्र इकाईयों के रूप में परिणित हो गई थी। रियासतों के शासकों के लिए अब यह आवष्यक हो गया था कि ऐसे ढांचों का निर्माण करें, जो आर्थिक गतिविधियों को संरक्षित कर सके।

अध्ययन का उद्देश्य

प्रस्तुत शोध पत्र का मुख्य उद्देश्य उन्नीसवीं सदी के विषेष संदर्भ में राजस्थान में प्रमुख उद्योग, व्यापार एवं दस्तकार वर्ग की स्थिति का अध्ययन करना है। किन्तु इसे राजस्थान के तत्कालीन सामाजिक एवं राजनीतिक संदर्भ में भी देखने का प्रयास किया गया है अर्थात् राजस्थानी समाज का समन्वित अध्ययन प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। साथ ही इसमें सम्पूर्ण भारत के सन्दर्भ को भी भुलाया नहीं गया है तथा विषयानुसार राजस्थान के व्यापार और वाणिज्य में परिवर्तन की पृष्ठभूमि में आर्थिक–सामाजिक संगठनात्मक समस्याओं

और इनसे उत्पन्न विचारणीय विषय को विवेचनात्मक ढंग से प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

अतः प्रस्तुत शोधपत्र में राजस्थान में उद्योग, व्यापार एवं दस्तकार वर्ग की उन्नति, आर्थिक स्थिति तथा व्यापार के उत्थान, पतन का विष्लेषणात्मक अध्ययन करने का प्रयास किया गया है।

साहित्यावलोकन

राजस्थान में दस्तकार वर्ग की सामाजिक व आर्थिक स्थिति के संदर्भ में किये गये इस शोध के महत्व, आवष्यकता, उद्देश्यों तथा शोध पद्धति का विवरण प्रस्तुत करते हुए, इस विषय पर लिखे गये साहित्य का अवलोकन, विश्लेषण एवं मूल्यांकन किया गया यथा–

कर्नल जेम्स टॉड द्वारा लिखित कृति, ''एनाल्स एण्ड एन्टीक्यूटीज ऑफ राजस्थान'' (1920) में राजस्थान के इतिहास के बारे में विस्तृत व्याख्या करते हुए, मारवाड़ एवं मेवाड़ के इतिहास पर विशेष प्रकाष डाला गया है। प्राचीन राजस्थान में जागीरदारी प्रथा, कर व्यवस्था, राज्य में सुधारों की ऐतिहासिक व्याख्या इस पुस्तक में की गई है।

डॉ. बसंत जोषी ने अपनी पुस्तक ''उन्नीसवीं सदीं का राजस्थान''(1997) में 19वीं शताब्दी के राजस्थान के व्यापारिक एवं औद्योगिक सर्वेक्षण को दर्शाया है। इस पुस्तक में बताया गया है कि 19वी सदी का राजस्थान परिवर्तन एवं संक्रमणकाल से गुजर रहा था। क्योंकि परम्परागत व्यापार एवं उद्योगों के स्वरूप में परिवर्तन हो रहा था।

गौरी शंकर हीराचन्द ओझा ने अपनी कृति ''राजपूताने का इतिहास'' (2014) में राजस्थान की विभिन्न रियासतों एवं राजवंशों की ऐतिहासिक व्याख्या करते हुए वहाँ के शासकों के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर भी प्रकाष डाला है।

बी.एम. दिवाकर द्वारा लिखित पुस्तक ''राजस्थान का इतिहास'' (1987) में राजपूतों की उत्पत्ति, इतिहास के साधन, बप्पा रावल, चौहानों का इतिहास, हमीर, मेवाड़ के राणा, राजा मानसिंह, रायसिंह, मिर्जा राजा जयसिंह, जसवंत सिंह, दुर्गादास, मराठे और राजपूत, जयपुर और अंग्रेज आदि की शासन व्यवस्था के साथ ही तात्कालीन सामाजिक, आर्थिक स्थिति का दिग्दर्शन कराया गया है।

डॉ. जयसिंह नीरज एवं डॉ. भगवती लाल शर्मा द्वारा लिखित कृति ''राजस्थान की सांस्कृतिक परम्परा'' (2017) में राजस्थान के इतिहास लेखन के साथ–साथ राजस्थान के सांस्कृतिक इतिहास की पृष्ठभूमि, पुरातत्व, स्थापत्य, मूर्तिकला, चित्रकला, संगीत, नृत्य, रंगकर्म, साहित्य एवं प्राचीन उद्योग पर विभिन्न विद्वानों के लेख प्रकाषित किये है।

श्याम सिंह तंवर ने अपनी पुस्तक ''स्टेट एडमिनिस्ट्रेषन इन राजस्थान, 19 सेंचुरी विद स्पेषल रेफरेंस ऑफ जोधपुर'' (2016) में राजस्थान में राज्य प्रषासन का 19वीं शताब्दी के संदर्भ में अध्ययन प्रस्तुत किया है। इसमें जोधपुर राज्य की प्रशासनिक व्यवस्था पर विषेष प्रकाष डाला गया है।

डॉ. गोपीनाथ शर्मा द्वारा लिखित रचना ''राजस्थान का इतिहास'' (2017) में राजस्थान की भौगोलिक एवं राजनीतिक स्थिति का वर्णन किया गया है। साथ ही इस पुस्तक में पृथ्वीराज चौहान एवं महाराणा प्रताप जैसे वीर प्रतापी राजाओं के राजस्थान की स्वतंत्रता में योगदान का बहुत ही सुन्दर चित्रण प्रस्तुत किया गया है।

उपर्युक्त विवेचन द्वारा शोध विषय से सम्बन्धित साहित्य की समीक्षा करने का प्रयास किया गया है। समय तथा अन्य परिस्थितियों की सीमाओं में रहते हुए जो साहित्य सुलभ हो पाये, उन्हीं की यहाँ समीक्षा की गई है।

शोध पद्धति

प्रस्तुत शोध पत्र हेतु शोधकर्ता की पद्धति ऐतिहासिक, व्याख्यात्मक, विश्लेषणात्मक और समालोचनात्मक रही है। ज्ञात तथ्यों तथा इस विषय पर उपलब्ध पूर्ववर्ती लेखकों के विचारों का विष्लेषण, स्पष्टीकरण, मूल्यांकन और आलोचनात्मक परीक्षण करते हुए प्राप्त परिणामों का सत्य की कसौटी पर परीक्षण करने का प्रयास किया गया है।

शोध अध्ययन में सबसे महत्वपूर्ण मुद्दा प्रस्तुत अध्ययन की विषय एवं शोध सामग्री का होता है। इस विषय पर माध्यमिक सामग्री का तो अभाव है, किन्तु प्राथमिक सामग्री भारत के राष्ट्रीय अभिलेखागार एवं राजस्थान राजय अभिलेखागार, बीकानेर में पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध है। सबसे प्रभावी स्त्रोत प्राथमिक स्तर के ही माने जाते है। इसलिए प्रस्तुत शोध पत्र में प्राथमिक स्तर की शोध सामग्री का ही अधिक उपयोग किया गया है। इसके अलावा प्रस्तुत शोध सामग्री को विभिन्न स्त्रोतों से प्राप्त कर तथा शोधन कर ही प्रयोग में लाया गया है।

राजस्थान की दस्तकार जातियाँ

राजस्थान के सामाजिक एवं आर्थिक जीवन में जाति व्यवस्था का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। यहाँ उत्पादक वर्ग में किसान व दस्तकार, वितरण वर्ग में महाजन तथा उपभोक्ता वर्ग में शासकवर्ग, सामान्य वर्ग तथा जनसामान्य शामिल थे।

उत्पादक वर्ग की कृषक जातियों में गुर्जर, जाट, विष्नोई, धाकड़, माली आदि जातियाँ शामिल थी, जबकि दस्तकार वर्ग में लुहार, सुनार, खाती, चमार, छीपा, रंगरेज, लखेरा, चुड़ीगर, ठठेरा, जुलाहा (बुनकर), पिंजारा, पटवा, शोरगर, गंधी, ग्वारिया, कारीगर, संगतराष, मीनाकार और खारवाल आदि जातियाँ शामिल थी। दस्तकार वर्ग के जाति आधारित संगठन का आधार उनका वंशानुगत व्यवसाय होता था। इस जाति व्यवस्था ने राजस्थान में कार्य विषेषीकरण व समाज के व्यवस्थित ढाँचे के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

19वीं शताब्दी में राजस्थान में निम्नलिखित दस्तकार जातियाँ अपने परम्परागत व्यवसाय में संलग्न थी–

लुहार

लुहार सभी गाँवों और कस्बों में होते थे। ये घर एवं खेत में प्रयुक्त होने वाले लोहे के औजार बनाते थे। जैसे– खुरपा, दांतली, फावड़ा, नकचुटी, चिमटा, फूंकनी, पलटा, हल का फाल आदि। वैदिक साहित्य में इन्हे 'कर्मकार' तथा पाली साहित्य में 'कमार' कहा गया है। समकालीन अभिलेखागारीय स्त्रोतों से ये प्रमाण मिलते है

P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-5* ISSUE-5* January- 2018
E: ISSN NO.: 2349-980X **Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika**

कि लुहार, तलवार, भाला, कटार आदि अस्त्र–शस्त्र बनाने में निपुण थे तथा इनकी दक्षता के कारण इन्हें मनीषी शिल्पकार भी कहा जाता था।

सुनार

ये सोने–चाँदी के आभूषण बनाने के व्यवसाय में संलग्न थे। पाली साहित्य में इन्हें 'मानिया' तथा वैदिक साहित्य में 'मणिकार' कहा गया है। समकालीन अभिलेखागारीय स्त्रोंतों में उल्लेख मिलता है कि 1822 ई. में राम जी, आरा, अमरा, किसन व माधो आदि स्वर्णकारों ने राजकुमारी सूरज कंवर के विवाह में विभिन्न प्रकार के गहने बनाये थे। कोटा रिकॉर्ड्स कुषाल नामक सुनार का उल्लेख करते हैं जिसने वि.सं. 1826 में कोटा दरबार हेतु एक सोने का हुक्का बनाया था।

खाती (बढ़ई)

लकड़ी का कार्य करने वाले खाती कहलाते थे। जोधपुर जिला अभिलेखागार की कोतवाली चबूतरा जमाबंदी बहीं नं. 754 परगना जालौर में खातियों के कार्य, मजदूरी व इनकी जीवन दषा के बारे में वैविधतापूर्ण चित्रण मिलता है। इनके द्वारा लकड़ी के दरवाजे, खिड़की, पलंग, मेजें, कुर्सीयां, झूले, गाड़ी, नाव, पालकी और कृषि के उपकरण जैसे–हल तथा कटाई व बुआई के उपकरण भी बनाये जाते थे।

19वी सदी में चुरू कस्बे का जांगिड़ परिवार चंदन की लकड़ी व हाथी दांत पर बारीक कारीगरी के लिए प्रसिद्ध था। इसी परिवार के मालचन्द जांगिड़ की प्रथम कलाकृति चन्दन की लकड़ी का निर्मित कलात्मक बादाम आज सरदार शहर संग्रहालय की शोभा बढ़ा रहा है।

रंगरेज

राजस्थान में कपड़ों की रंगाई का काम आम तौर पर रंगरेज या नीलगर करते थे। रंगरेज और नीलगर दोनों की जाति एक ही है सिर्फ नाम का फर्क है। जो कसूम का रंग रंगते है व रंगरेज और जो नील की रंगत करते हैं वे नीलगर कहलाते है। रंगरेज का काम हिन्दु–मुस्लिम दोनों ही करते थे पर अधिकांश रंगरेज मुसलमान थे और अभी भी है। रंगरेजों द्वारा पगडियाँ, साफे, ओढ़नी, पोमचा, लहरिया और चुनरी भांत के वस्त्र अधिक संख्या में बांधे और रंगे जाते थे। रंगरेज और नीलगर कच्चे व पक्के दोनों ही प्रकार के रंगों में रंगाई करते थे। लाल, पीला, गुलाबी रंग सुहागिन स्त्रियों के पसंदीदा रंग होते थे।

छीपा

छीपा जाति के लोग छींट और अन्य सूती कपड़ों पर छपाई का कार्य करते थे। जयपुर के सांगानेर के छीपों को 'नामदेवी छीपा' कहते है क्योंकि इनके कुल पुरूष संत नामदेव जी थे। यहाँ की 'दाख बेल व चौबुन्दी' की फड़द अत्यधिक चाव से खरीदी जाती थी। सांगानेरी छपाई लट्ठा या मलमल पर की जाती थी। सांगानेर के पास अमानीषाह के नाले से अप्रत्यक्ष रूप से जुड़ी ढूंढ नदी छीपों के लिए प्रकृति का वरदान रही है। सांगानेरी प्रिंट में काला व लाल रंग अधिक काम में आते थे। छीपों द्वारा वस्त्रों की छपाई के लिए दो विशिष्ट शैलियाँ प्रचलित थी– 'अजरख' और 'मलीर'। अजरख में लाल एवं नीले रंग से छपाई होती है जबकि मलीर मे ललाई लिए हुए कत्थई एवं काले रंग से छपाई होती थी।

बंधेरा

ये ब्रह्मण खत्री होते थे जो जालौर और जसवंतपुरा परगनों मे पगड़ियों और ओढ़नियों को बांधने व रंगने का काम करते थे। इससे इनका नाम बंधेरा हुआ। जोधपुर, नागौर और पाली में जो काम मुसलमान चढ़वे करते है वहीं काम ये अपने परगने में करते थे। कपड़े पर रंग चढ़ाने से इनका नाम 'चढ़वा' हुआ। ये मुसलमान थे और मुल्तान को अपना वतन बताते थे जहाँ से ये मारवाड़ आये।

लखेरा

लखेरा लाख की चूड़ियाँ और हाथी दांत के चूड़े का कार्य करते थे। लाख की चूड़ियाँ बनाने के कारण ही यह जाति लखेरा कहलाई। लखेरा हिन्दू और मुस्लिम दोनों समाज के लोग होते थे। लेकिन समकालीन साक्ष्यों में अधिकांष मुस्लिम चूड़ीगरों के ही नाम मिले है। कबीर बीकानेर का प्रसिद्ध चूड़ीगर था जो हाथी दांत के चूड़े बनाने में दक्ष था। इसी प्रकार हबीब आर इमामुद्दीन जालौर कस्बे के प्रसिद्ध चूड़ीगर थे।

मोची

मोची जूते एवं चमड़े की अनेक वस्तुएँ बनाते थे। वैदिककाल में मोची को चारमान भी कहा जाता था। दबगार भी निम्न जाति के लोग थे जो लम्बे चमड़े के पात्र बनाते थे जिसमें घी व शुद्ध मक्खन डाला जाता था। मोची, रैगर, बलाई आदि जातियाँ चमड़ा उद्योग में संलग्न थी। ये घी, तेल रखने के सीदड़े (भाण्डे), ढाले, तलवार व म्यानें, घोड़े की साज काठियाँ, चड़स, किताबों के जिल्द, मषक आदि बनाते थे।

ठठेरा

राजस्थान में पीतल के बर्तन बनाने वाले दस्तकार वर्ग को ठठेरा तथा काँसी के बर्तन बनाने वाले हस्तषिल्पियों को 'कंसारा' नाम से जाना जाता था। राजस्थान में जयपुर, जोधपुर, गोविन्दगढ़ (अजमेर), जालौर, बीकानेर एवं सिरोही के ठठेरा और कंसारा परिवार पीढ़ी दर पीढ़ी पीतल व कांसे के बर्तन बनाते आये हैं। सम्पूर्ण राजस्थान में नागौर के सिद्धहस्त ठठेरों द्वारा तैयार कांसे व पीतल के बर्तनों की मांग बहुत अधिक थी। यहाँ पीढ़ीयों से ठठेरा परिवारों ने अपनी इस कला को जीवित रखा है तथा वर्तमान में भी लगभग दो सौ परिवार इस उद्योग में संलग्न है।

कलाल

राजस्थान राज्य अभिलेखागारीय स्त्रोतों में राजस्थान की प्रमुख व्यावसायिक जातियों में कलाल को भी महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। कलाल मुख्य रूप से शराब बनाने के व्यवसाय में संलग्न थे। शराब महुआ के पेड़ के फूलों से तथा सड़े हुए गुड़ से बनाई जाती थी। सरकार कलालों को शराब की बिक्री हेतु पट्टा जारी करती थी।

कुम्हार

मुहणोत नैणसी ने व्यवसायिक जातियों को पवन जातियां कहकर सम्बोधित किया है। नैणसी ने जिन पवन जातियों का उल्लेख किया है उनमें मिट्टी के बर्तन बनाकर उपलब्ध कराने वाले दस्तकार वर्ग को कुम्हार कहा जाता था। कुम्हार जाति के कारीगर 'चाक' पर सुन्दर मिट्टी के बर्तन बनाते थे। बर्तनों के अलावा कुम्हार मिट्टी के खिलौने व मिट्टी की मूर्तियाँ बनाने की हस्तकला में भी पारंगत थे। नाथद्वारा के समीप मोलेला के कुम्हारों ने इस कार्य में विषेष दक्षता प्राप्त कर ली थी।

पटवा

राजस्थान के हस्तशिल्पी वर्ग में पटवा या तरकष भी एक महत्वपूर्ण वर्ग था। जस्ता, टिन व अन्य निम्न स्तरीय धातुओं के गहनें बनाने एवं बेचने में यह वर्ग संलग्न था। पटवा चाँदी एवं सोने के तारों से कारीगरी करते हुए फूल एवं डोरियाँ भी डिजाइन करते थे इन्हें 'तरकष' भी कहते थे।

जोधपुर के पटवा रेषम के कषीदेकारी वाले धागे बनाने में पारंगत थे जिन्हें 'फूलमाला' कहा जाता था। इन कषीदे वाले धागों को शाही वर्ग के लोगों की पगड़ियों में लगाया जाता था। राज्य के घोड़ों की तरकष के लिए रेषम की लेष भी जोधपुर के पटवा तैयार करते थे।

सिकलीगर

राजस्थान की व्यवसायिक जातियों में सिकलीगर भी एक मुख्य जाति थी। ये लौहे के औजारों पर पॉलिष करते और धार लगाते थे। अलवर का सिलहखाना अद्भूत अस्त्र–शस्त्र के लिए विख्यात रहा है। यहाँ के सिकलीगर लोहे के अस्त्र–शस्त्र बनाने में निपुण थे। जयपुर के सिकलीगर की कला का अध्ययन जयपुर सिलहखाने में प्रदर्षित भारतीय तलवार अलमानी या इलेमानी को देखकर किया जा सकता है। राजस्थान में सिरोही के सिकलीगरों की कला का कोई सानी नहीं था।

पिंजारा

रूई धुनने वाली जाति पिंजारा या कन्ड़ारा कहलाती थी। यह जाति राजस्थान के प्रत्येक गाँव व कस्बे में निवास करती थी लेकिन दक्षिण–पष्चिम राजस्थान में यह वर्ग अधिक प्रभावशाली था। विक्रम संवत् 1873 के कोटा रिकॉर्डस से ज्ञात होता है कि निजाम नामक पिंजारा 2 मन, 10 सेर कच्ची रूई मनोहर थाना कस्बे से राजगढ़ धुनने के लिए लाया था।

तेली

इस दस्तकार वर्ग द्वारा अरण्डी, सरसों, सोयाबीन, मूंगफली, सूरजमुखी और तिल आदि से तेल निकालने का कार्य किया जाता था। तेली आमतौर पर राजस्थान के सभी गाँवों और कस्बों में निवास करते थे। आज भी जयपुर के चौड़ा रास्ता में स्थित 'तेली पाडा' में बड़ी संख्या में तेली निवास करते हैं। जोधपुर रिकॉर्डस से ज्ञात होता है कि वि. सं. 1834 में तेली भोजा ने जालौर में एक नई घाणी स्थापित की थी।

दर्जी

दर्जी जाति हिन्दू एवं मुसलमान दोनों ही वर्गों में होती थी। वे शाही उपभोग के लिए जामा, चोला, शेरवानी, रेशमी कुर्ता आदि वस्त्रों की सिलाई करते थे। इसी प्रकार आम जनता में प्रचलित साधारण सूत के कपड़े, अंगरखी, कुर्ते–पायजामे महिलाओं के लिए फड़द एवं छींट के घाघरे, कलि पेटिकोट एवं सुन्दर काँचली आदि की सिलाई करते थे।

शोरगर

दस्तकारों का वह वर्ग जो गोला–बारूद और पटाखें बनाने का कार्य करता था उन्हें शोरगर कहा जाता था। कुछ समकालीन अभिलेखागारीय साक्ष्यों में शोरगरों को इवाईगर कहे जाने के भी साक्ष्य मिले हैं। शोरगर वर्ग अधिकांषतः मुस्लिम होते थे। और ये अपने कार्य में काफी पारंगत और दक्ष थे। विषेष रूप से कोटा एवं जालौर के शोरगरों का राजस्थान में अधिक नाम था।

राजगीर और संगतराष

यह दस्तकार वर्ग गृह निर्माण और पत्थर तराषने के व्यवसाय में संलग्न था। समकालीन स्त्रोत 'खाटू' नामक राजगीर का उल्लेख करते हैं जो भवन निर्माण एवं पत्थर काटने की कला में दक्ष था। कोतवाली चबूतरा जमाबंदी बही नं. 753 व 754 में जालौर में सरकार द्वारा विभिन्न शाही भवनों के निर्माण में लगे अनेक राजगीरों का उल्लेख हुआ है। भूधर जयपुर का प्रसिद्ध संगतराष था जिसने स्वर्गीय महाराजा सवाई जयसिंह की छतरी का निर्माण किया था।

गंधी

सुगन्धित तेल और विभिन्न प्रकार के इत्र बनाने वाले गंधी कहलाते थे। अमीर वर्ग की सुगंधित तेल व इत्र की महक की ईच्छा ने इस वर्ग के विकास में योगदान दिया। भारत में गुलाब के इत्र के अविष्कार का श्रेय मुगल शासक जहाँगीर की बेगम नूरजहाँ की माता अस्मत को जाता है। 19वी शताब्दी में सूरतराम और धौला कोटा के प्रसिद्ध गंधी थे।

साबणगर

मुहणोत नैणसी की ख्यात में साबणगर नामक व्यवसायिक जाति का उल्लेख मिलता है जो साबुन बनाने का कार्य करती थी। जालौर की जमा खर्च बही में हमें अमी मोहम्मद और दोस्त अली नामक प्रसिद्ध साबणगरों के उल्लेख मिलते हैं जो बड़े पैमाने पर साबुनों का निर्माण करते थे। साबणगर सांभर, डीडवाना, पचपदरा व नावा में काफी संख्या में निवास करते थे। साबणगरों के अलावा राजस्थान के विभिन्न भागों में नमक बनाने का व्यवसाय करने वाला खरवाल नामक दस्तकार वर्ग भी अपने व्यवसाय में पारंगत था। खरवाल साम्भर, कछोर, रेवासा, पचपदरा के अलावा बीकानेर में लुणकरणसर, जोधपुर में फलौदी व डीडवाना (नागौर) से अच्छी किस्म का नमक तैयार करते थे।

जुलाहा

जुलाहा कपड़े बुनने का व्यवसाय करने वाले होते थे। जोधपुर रिकॉर्ड्स में खतीपुरा के शेख मोहम्मद नामक जुलाहे का उल्लेख मिलता है जो अपने कार्य में दक्षता के कारण काफी प्रसिद्ध हो गया था। इसी प्रकार जोधपुर के जुलाहे अपने मषरू छींट के लिए प्रसिद्ध थे। मध्यकालीन भक्ति आन्दोलन के प्रमुख संत कबीर जी का सम्बन्ध भी इसी जुलाहा जाति से माना जाता है।

उपर्युक्त दस्तकार वर्ग की जातियों के अलावा कीर, तम्बोली, ग्वारियाँ, दबगर, जिल्दसाज, कलीगर आदि अन्य जातियाँ भी थी जो यहाँ के कुटीर उद्योग–धन्धों के विकास में संलग्न थी। आर्थिक रूप से पिछड़े कीर जाति के लोगों द्वारा चटाई व टोकरियाँ बनाने का कार्य किया जाता था। राजस्थान में टोंक के समीप मालपुरा व टोड़ारायसिंह क्षेत्र में खजूर के पेड़ों की बहुतायत होने के कारण यहाँ टोकरी बनाने का कार्य अधिक होता था। यहाँ की महिला दस्तकार नमदा बनाने के व्यवसाय में भी पारंगत थी। ऐतिहासिक दृष्टि से नमदा बनाने की कला मूलतः टोक के मालपुरा से ही प्रारम्भ हुई थी। तम्बोली पान बेचने का कार्य करते थे। ग्वारिया घर–घर घूमकर सामान बेचते थे और घांची टोकरी निर्माता थे तथा कालीगर खाना पकाने वाले टीन व तांबे के बर्तन बनाते थे जो पाकषाला के कार्यो के लिए आवष्यक व उचित माने जाते थे।

दस्तकार वर्ग की सामाजिक–आर्थिक दषा

दस्तकार वर्ग में सामाजिक दृष्टि से जाति प्रथा का परम्परागत स्वरूप कायम रहा। समकालीन अभिलेखागारीय स्त्रोतों में उनके सामाजिक स्तर, रहन–सहन, विवाह, संस्कार, संयुक्त परिवार प्रथा आदि के बारे में प्रचुर सामग्री उपलब्ध होती है। जोधपुर रिकॉर्डस की कामराना बही (वि.सं. 1913) से ज्ञात होता है कि समाज में जाति पंचायतें अपनी जाति की उन्नति के लिए खान–पान, शादी–विवाह एवं रीति–रिवाजों के सम्बन्ध में समय–समय पर नियम बनाती थी और अपनी जाति के लोगों से जातीय नियमों एवं मार्यादाओं का पालन करवाती थी। जाति पंचायतें ऐसे मामलों की सुनवाई परम्परागत रिवाज के अनुसार करती थी जिनसे जातीय नियमों एवं मर्यादाओं का पालन करवाती थी। जाति पंचायतें ऐसे मामलों की सुनवाई परम्परागत रिवाजों के अनुसार करती थी जिनसे जातीय शुद्धता पर आंच आती हो। दस्तकार वर्ग को दिया जाने वाला दण्ड अपराध की प्रकृति पर निर्भर करता था। सबसे कठोर दण्ड अपराधी व्यक्ति को जाति से बहिष्कृत कर देना था। यद्यपि जाति पंचायत के निर्णय से असंतुष्ट व्यक्ति राजकीय न्यायालय की षरण ले सकता था। परन्तु वहाँ भी जाति पंचों की सहायता से ही न्याय किया जाता था। इस प्रकार परम्परागत सामाजिक ढाँचे को बनाये रखने में जाति पंचायतों ने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की थी।

राजस्थान में सामाजिक दृष्टि से परम्परागत स्वरूप कायम रहा मगर आर्थिक दृष्टि से उसमें परिवर्तन आ गया और राजपूताना पर ब्रिटिश संरक्षण की स्थापना के बाद शासक और सामन्तों की बड़ी–बड़ी सेनाओं के विघटन, नमक व्यवसाय पर अंग्रेजों का प्रभाव बढ़ना तथा राजकीय सेवाओं के विस्तार, भूमि बन्दोबस्त, यातायात के नए साधनों के विकास इत्यादि तत्वों के सामूहिक प्रभाव से जातिगत व्यवसाय के साथ–साथ अन्य पेषों को अपनाने की प्रवृत्ति को काफी प्रोत्साहन मिला।

पटवा, सिकलीगर, गंधी, बढ़ई, लखेरा, ठठेरा, कुम्हार, लुहार, पिंजारा, कंदारा, कलाल, तेली तथा सुनार आदि व्यवसायिक जातियों की स्थिति में यद्यपि कोई विषेष परिवर्तन नहीं आया और वे 19वी सदी में भी पहले की भांति अपना परम्परागत व्यवसाय करती रहीं। किन्तु बड़े–बड़े नगर और कस्बों में कुषल मजदूरों की मांग बढ़ जाने से इन लोगों में षहरों की ओर जाने की प्रवृत्ति बढ़ी। कसाई, बलाई, चमार, रैगर आदि जातियों से कुछ ने कृषि को अपना व्यवसाय बना लिया था।

19वी सदी के उत्तरार्द्ध में नयी मषीनों पर आधारित नये कारखानों की शुरूआत से राज्य में एक नये अध्याय की शुरूआत हुई। राज्य में स्थित शान्ति व्यवस्था ने विकास को गति प्रदान की। पहले जहाँ दस्तकारों के मकान मिट्टी के कच्चे घरों का स्थान प्लास्टर किये हुए पक्के घरों (पत्थर के) ने ले लिया। रसोई में मिट्टी के बर्तनों का स्थान धातु के बर्तनों ने ले लिया था। कुर्सी व मेज का प्रयोग भी शाही घरों व दफ्तरों में बढ़ गया था।

दस्तकार वर्ग की आर्थिक दषा

समकालीन अभिलेखागारीय स्रोतों से ज्ञात होता है कि दस्तकार वर्ग की आर्थिक दषा संतोषजनक स्थिति से काफी दूर थी । जोधपुर, बीकानेर व कोटा रिकॉर्ड्स बताते है कि जो मजदूर मजदूरी प्राप्त करते थे वो 2 रूपये से 4 रूपये के बीच होती थी जो काफी कम थी। राज्य कारखानों में संलग्न दस्तकारों को भी काफी षिकायतें थी। उदाहरणार्थ– सनद परवान बही नं. 21 में उल्लेख आता है कि एक तेली षिकायत करता है कि उसने गुलाब व चमेली का तेल निकालने में काफी श्रम व

P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-5* ISSUE-5* January- 2018
E: ISSN NO.: 2349-980X **Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika**

समय लगाया, मगर वह काफी कम तनख्वाह पाता था और वह भी उसे समय पर प्राप्त नहीं होती थी। अकुषल श्रमिकों की दषा तो काफी बुरी थी। कोटा के राजमहल में कार्य में संलग्न मजदूरों को केवल 4 छटांक ज्वार प्रतिदिन दी जाती थी।

ग्रामीण दस्तकार वर्ग की तुलना में शहरी दस्तकार वर्ग अपेक्षाकृत अधिक लाभ की स्थिति में था। ग्रामीण दस्तकार उन्नीसवीं शताब्दीं में भी जमींदार, जागीरदार व साहुकारों के दबाव में जीता था। उन्हें सामान्यतः वस्तु रूप में ही भुगतान किया जाता था। लुहार, खाती, तेली, दर्जी ठठेरा, मोची आदि जो किसानों व अन्य वर्ग के लिए चीजें बनाने के काम करते थे, उन्हें फसल काटने के समय ही उपभोग के लिए एक निष्चित मात्रा में अनाज दे दिया जाता था। ग्रामीण दस्तकार वर्ग का शोषण किया जाना आम बात थी। इसके अलावा दस्तकार वर्ग पर विभिन्न प्रकार के कर लगाये गये थे। जिससे उनका आर्थिक जीवन दयनीयता की ओर अग्रसर होता गया।

एक साधारण दस्तकार के पास अपनी वस्तुएँ तैयार करने के लिए आवष्यक कच्चा माल खरीदने के लिए पर्याप्त पूँजी की कमी रहती थी। उन्हें ऋण दाताओं पर निर्भर रहना पड़ता था। महाजन व साहूकार निर्धन दस्तकारों को जब धन का अन्न के रूप में ऋण देते थे तब उस पर वे उनसे मनमाना ब्याज वसूल लेते थे। दस्तकार वर्ग में बेरोजगारी भी आम थी। राज्य के कारखानों में काम करने वाले दस्तकारों की संख्या बहुत कम होती थी। जो दस्तकार वर्ग सामान्य वस्तुएँ बनाते थे उन्हें सीमित बाजार मिलता था। जबकि दक्षता प्राप्त कारीगरों की तो राज्य की बाहर भी मांग थी। बेरोजगारी किसी ना किसी रूप में विद्यमान थी।

अतः उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि 19वीं शताब्दी में दस्तकार वर्ग अपनी कम आय, सामाजिक–धार्मिक अवसरों पर किये जाने वाले अत्यधिक खर्च, कच्चे माल की अपर्याप्त आपूर्ति व संगठित विपणन संस्थाओं की कमी के कारण ऋणदाताओं के चंगुल में फँस जाते थे।

दस्तकार वर्ग की वर्तमान स्थिति

आज वैष्वीकरण के युग में बढ़ते उद्योग–धन्धों, नवीन औद्योगिक व्यावसायिक संरचना, शहरीकरण यातायात के साधनों के विकास के परिवर्तनषील दौर में दस्तकार वर्ग की सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति में भी बड़ा बदलाव आया है। अब परम्परागत जातीय व्यवसायों के अलावा प्रत्येक जाति को अन्य विविध व्यवसाय अपनाने पड़ रहे हैं। क्योंकि मषीनीकरण के युग में दस्तकारों द्वारा निर्मित वस्तुओं की बाजार में ज्यादा कीमत नहीं मिलती है जबकि मषीनों से निर्मित वस्तुओं की तकनीक एवं गुणवत्ता अच्छी होने के कारण बाजार में ज्यादा मांग होती है। इसलिए दस्तकारों के सामने रोजी–रोटी का संकट खड़ा हो गया है। किन्तु यह तो सिक्के का एक पहलू हुआ। सिक्के का दूसरा पहलू यह है कि भारत सरकार एवं राज्य सरकार दोनों ही हस्तकलाओं को बचाने हेतु प्रयासरत है और इसलिए दस्तकार वर्ग के विकास हेतु अनेक योजनाएँ संचालित कर रही है। उदारीकरण के युग में कुषल कारीगरों की बड़ी मांग बनी हुई है इसलिए सरकारें दस्तकार वर्ग को विभिन्न प्रषिक्षण कार्यक्रमों द्वारा कुषल एवं दक्ष कारीगर बनाने हेतु प्रयासरत है।

सुझाव

दस्तकार वर्ग की सामाजिक एवं आर्थिक दषा को सुधारने हेतु निम्नलिखित सुझाव दिये जा सकते है यथा–

1. दस्तकार वर्ग द्वारा आधुनिक तकनीक का इस्तेमाल किया जाना चाहिए।
2. सरकारों को दस्तकार वर्गों के लिए कौषल विकास कार्यक्रम चलाये जाने चाहिए।
3. दस्तकार वर्ग को अपने द्वारा बनायी गई वस्तुओं को बेचने हेतु आधुनिक मार्केटिंग रणनीति बनाने की जरूरत है।
4. सरकार को दस्तकार वर्ग को कच्चा माल एवं नई मषीनें खरीदने हेतु वित्तीय सहायता उपलब्ध करवानी चाहिए।

5. सरकार को दस्तकार वर्गो के आधुनिक प्रषिक्षण की उचित व्यवस्था करनी चाहिए। ताकि देष में उच्च प्रषिक्षित दस्तकारों की कमी को पूरा किया जा सके।

अतः कहा जा सकता है कि आज औद्योगिकीकरण के युग में दस्तकार वर्ग के वंशानुगत काम की प्रवृति बदल रही है। इसलिए दस्तकार वर्ग द्वारा आधुनिक तकनीक व प्रषिक्षण अपनाकर वर्तमान समय में अपनी स्थिति को सुदृढ़ बनाये रखा जा सकता है।

निष्कर्ष

19वीं सदी में राजस्थान के व्यापार को उन्नत अवस्था में नहीं माना जा सकता। राजस्थान के माल के बाजारों के सीमित होने का व्यापार पर विपरीत प्रभाव पड़ा। इस समय परिवहन के साधन भी परम्परागत ही रहे। मुख्यतः ऊँट–गाड़ियों, गधों आदि का उपयोग परिवहन में होता था। माल ढ़ोने वाले परम्परागत समुदाय, बनजारे का महत्व अभी बना हुआ था। किन्तु नये संदर्भों में उनका व्यवसाय पतनोन्मुख था। 19वीं सदी में अंतिम दो दषकों में सड़क, रेल एवं डाक–तार का आरम्भ हुआ था जो परिवहन एवं संचार का आधुनिकीकरण कहा जा सकता है। 19वीं सदी के अन्त तक स्थानीय संचार एवं परिवहन व्यवस्था अधिक विकसित नहीं हो पायी थी। इनका व्यापारिक लाभ तो बीसवीं सदी में ही मिल पाया।

अन्त में कहा जा सकता है कि 19वीं सदी का राजस्थान परिवर्तन एवं संक्रमण के काल से गुजर रहा था। परम्परागत व्यापार एवं उद्योगों के स्वरूप में परिवर्तन हो रहा था। इन क्षेत्रों में कुछ आधारभूत प्रवृत्तियाँ जन्म ले रही थीं, जिनका विकसित रूप बीसवीं सदी के पूर्वाद्ध में दिखायी देता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. *टॉड, कर्नल जेम्स, एनाल्स एण्ड एन्टीक्यूटीज ऑफ राजस्थान, भाग–2, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सटी प्रेस, 1920, पृष्ठ 14.*
2. *जोषी, बसन्त, उन्नीसवीं सदी का राजस्थान, जयपुर पब्लिशिंग हाऊस, जयपुर, 1997, पृष्ठ 69.*
3. *ओझा, गौरीषंकर हीराचन्द, राजपूताने का इतिहास, राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर 2014, पृष्ठ 2–3.*
4. *दिवाकर, बी.एल., राजस्थान का इतिहास, साहित्यागार, जयपुर, 1987, पृष्ठ 344.*
5. *नीरज, जयसिंह, शर्मा, भगवती लाल, राजस्थान की सांस्कृतिक परम्परा, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर 2007, पृष्ठ 214.*
6. *तंवर, श्याम सिंह, स्टेट एडमिनिस्ट्रेषन इन राजस्थान, 19 सेंचुरी विद स्पेशल रेफरेंस ऑफ जोधपुर, लोक चेतना प्रकाशन, 2016 पृष्ठ 35.*
7. *शर्मा, गोपीनाथ, राजस्थान का इतिहास, षिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी, इंदौर, 2017, पृष्ठ–519.*
8. *सनद परवाना बही संख्या–19, विक्रम संवत् 1864 (1807 ई.) जोधपुर रिकॉर्ड्स, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर, पृष्ठ 58.*
9. *दस्तूर कौमवार वोल्यूम 23, पृष्ठ 589, जयपुर रिकॉर्ड्स, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर।*
10. *जमा खर्च बही, परगना जालौर, विक्रय संवत्1836 (1779 ई.) जोधपुर जिला अभिलेखागार, जोधपुर, पृष्ठ 86.*